खण्डः 1, अंकः 1 अगस्त 2018

संश्लेषण

डी सी आर सी मासिक पत्रिका

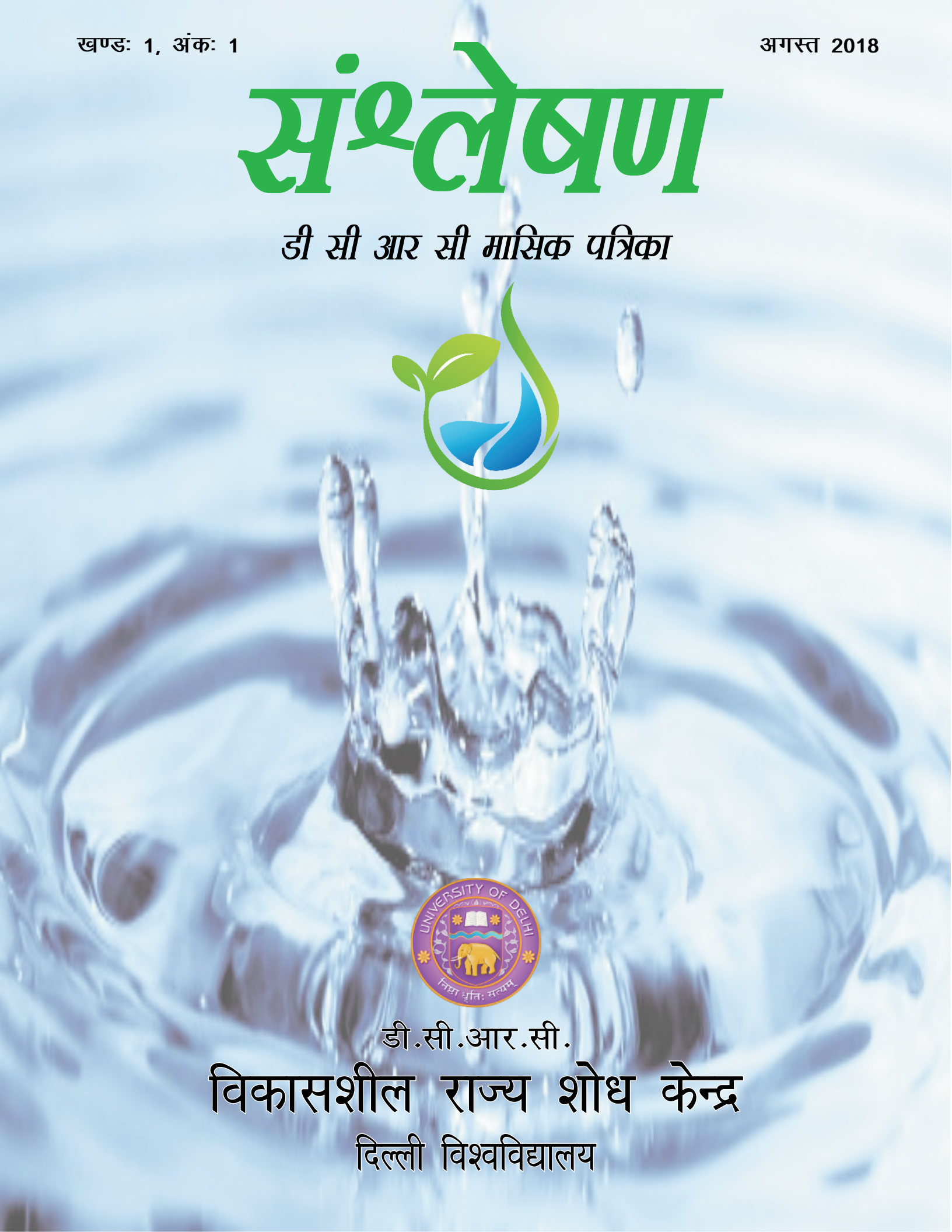

डी.सी.आर.सी.
विकासशील राज्य शोध केन्द्र
दिल्ली विश्वविद्यालय

मुख्य संपादक
प्रो. सुनील के चौधरी

संपादक
डा. रमेश भारद्वाज
श्री नागेन्द्र कुमार

संपादकीय मंडल
डा. अभिषेक नाथ
श्री आशीष कुमार शुक्ल
श्री कुँवर प्रांजल सिंह

© डीसीआरसी 2018

रूपाकंनः आर किशोर

संश्लेषण
मुख्य कथ्यः जल

अनुक्रमिका

सम्पादकीय

I जल की संस्कृति तथा राजनीति

- ♦ जल, जीवन और आंदोलन– डा अभिषेक नाथ 4–5
- ♦ संस्कृति, संसाधन एवं संचयन – गरिमा शर्मा 6–8
- ♦ जल की राजनीति – कुँवर प्रांजल सिंह 9–10
- ♦ जल एवं जेंडर – रजनी एवं राखी 11–13
- ♦ जल संकटः प्रकृति के आधार पर समाधान – जया ओझा 14–16
- ♦ जल संघर्षः एक नया स्वरूप – पंकज 17–19
- ♦ जल अभिशासन – सृष्टि एवं राम किशोर 20–21

II जल प्रबंधन एवं अंतर्बंधन

- ♦ भारत में नदी अंर्तबंधन परियोजनाः एक तथ्यात्मक विश्लेषण – आशीष कुमार शुक्ल 23–25
- ♦ विनाश के समीप यमुनाः दिल्ली का व्यष्टि अध्ययन – काजल 26–28

III साहित्यिक समीक्षा

- ♦ बाढ़ संबंधी साहित्यः विभिन्न दृष्टिकोणों की वर्तमान संदर्भ में एक समीक्षा – निशा कुमारी 30–32

सम्पादकीय

विकासशील राज्य शोध केन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका, संश्लेषण के प्रथम अंक के प्रकाशन करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। यह पत्रिका शोध केन्द्र से जुडे समस्त शोधार्थियों, शिक्षार्थियों एवं विद्यार्थियों द्वारा समसामयिक मासिक विषय पर एक सामूहिक विचार प्रकटीकरण का प्रयास है। वर्ष 2018 के अगस्त माह में बाढ़, ज्वार, तूफान, इत्यादि जैसी भीषण प्राकृतिक आपदाओं ने 'जल ही कल है' प्रसंग को नवीन रूप में उजागर किया। विषय की समसामयिकता को ध्यान में रखते हुए केन्द्र द्वारा इस विषय पर लेख आमंत्रित किये। दस उत्कृष्ट लेखों को सम्पादकीय मंडल ने चयनित किया जो आप सभी के समक्ष एक प्रकाशित पत्रिका के रूप में उल्लेखित हो रहे हैं। ये समस्त लेख न केवल जल रूपी जीवन के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करते हैं अपितु भारत के विशेष संदर्भ में इसके संचयन व प्रबंधन की महता को भी उदृत करने का प्रयास करते हैं।

संश्लेषण के प्रथम अंक के समस्त लेख मौलिक हैं तथा जीवन से जुड़े आधारभूत बिंदुओं को प्रकट करते हैं। लेखकों के विचार स्वतंत्र चिंतन के परिचायक हैं तथा सम्पादकीय मंडल ने इनकी मौलिकता को संपादन के माध्यम से किसी भी प्रकार से प्रभावित व परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया है। लेखों में प्रस्तुत तथ्य, चित्र एवं मत लेखकों के स्वंय की रचनात्मकता, सृजनात्मकता एवं मौलिकता को प्रदर्शित करती है।

संश्लेषण के प्रथम अंक में प्रकाशित लेखों पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर हम वर्ष 2018 के सितम्बर माह के अपने अगले समसामयिक एवं महत्वपूर्ण अंक में और सुधार लाने का प्रयास करेंगें।

संपादक मंडल
शुक्रवार, 28 सितम्बर 2018

I

जल की संस्कृति तथा राजनीति

मौलिक रूप से सामाजिक, राजनीति तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से जल एक ऐसा संसाधन है जो जीवन से लेकर व्यक्ति के सभी पहलुओं से जुड़ा हुआ है। लेकिन बदलते वैश्वीकरण के इस युग में जल को लेकर एक असुरक्षा का वातावरण बना हुआ है। जिसकी प्रकिया में राज्य राजनीति से लेकर संघर्ष तथा संकट को विशेष रूप से समझने की आवश्यकता है।

जल, जीवन और आन्दोलन

डा. अभिषेक नाथ
राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

जल, जीवन और आन्दोलन की एक ही प्रकृति है – निरंतरता। स्थिरता तीनों की ही प्रकृति के अनुकूल नहीं है। स्थिर या ठहरे हुए जल में जिस प्रकार सड़न आ जाती है उसी प्रकार जीवन में स्थिरता मृत्यु की परिचायक है जबकि आन्दोलन में निरंतरता का अभाव उसके अवसान का सूचक है। आश्चर्य नहीं कि इस निरंतरता में किसी भी प्रकार की बाधा को तोड़कर आगे बढ़ना इनकी नियति है।

हाल ही में केरल राज्य में आई भीषण बाढ़ के प्रकोप को इसी निरंतरता को प्राप्त करने और संतुलन की आवश्यकता के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। निश्चयवादियों का यह तर्क रहा है कि प्रकृति और प्राकृतिक स्रोत मानव के विकास या निरंतरता के लिए साधन मात्र हैं, जिसका प्रयोग मानव अपने हित में कर सकता है। इस विचार ने विकास के एक ऐसे मॉडल को जन्म दिया जिसने मानव के आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन को बढ़ावा दिया। इसकी परिणति वैश्विक स्तर पर कई पर्यावरणीय समस्याओं के रूप में सामने आया।

बावजूद इसके कि केरल भारत में सबसे अच्छे शासित राज्यों में से एक है, जहाँ मानव विकास सूचकांक कई पश्चिमी यूरोपीय देशों के समकक्ष है, परन्तु विकास की गतिविधियों में इसकी पहल उपरोक्त विचार से अलग नहीं है। भौगोलिक रूप से पश्चिमी घाट के पर्वतों–पहाड़ों से घिरे केरल राज्य में 41 छोटी– बड़ी नदियाँ हैं जो पर्वतीय होने के कारण तीव्रगामी हैं। इन नदियों पर 80 बाँध बनाए गए हैं जिनके द्वारा इन नदियों के जल को रोककर विकास की विभिन्न गतिविधियों में प्रयोग किया जाता है। साथ ही उत्तरी–पश्चिमी मानसून का क्षेत्र होने के कारण केरल में प्रर्याप्त वर्षा होती है, जिनके लिए पश्चिमी घाट के पर्वत सहायक हैं। वर्ष 2017 जुलाई–अगस्त माह में जितनी वर्षा 4 महीनों में होती है, उतनी दो महीनों में ही हो जाने से वर्षा की आगत अधिक हुई। दूसरी ओर बाँधो द्वारा पानी को रोके जाने और अविवेकपूर्ण रुप से अचानक द्वारों को खोले जाने से बड़े पैमाने पर संचित जल तीव्रता से ढलानों की तरफ बढ़े। वृक्ष, जो जल की तीव्रता को संतुलित करते हैं, का विकास कार्यों के लिए अत्यधिक कटाव ने इन प्राकृतिक अवरोधों को नष्ट किया जिसकी परिणति भू–स्खलन और भीषण बाढ़ के रूप में सामने आयी। वर्षा जो कि केरल में कृषकीय एवं मानवीय जीवन की निरंतरता का स्रोत है, वही उसके विनाश के लिए उत्तरदायी बन गई। जिसने इस बात को पुनः स्थापित किया कि प्रकृति और मानव जीवन दोनों की निरंतरता इस बात पर निर्भर करेगी कि इन दोनों के बीच कितना संतुलन और सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर पाते हैं।

जल और जीवन के बीच ऐसे सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए विकास के वैकल्पिक मार्ग की मांग के लिए आन्दोलनों की भूमिका अपनी प्रासंगिकता सिद्ध करती है। ज्ञातव्य है कि केरल जैसे राज्यों में जीवन के लिए प्रर्याप्त जल की आवश्यकता एक महत्वपूर्ण आयाम है। अतः जल एवं जल स्रोतों का संरक्षण, परिवर्द्धन और साम्यपूर्ण वितरण के लिए आन्दोलनों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। ऐसे कुछ आन्दोलन पूर्व में अपनी महत्ता सिद्ध कर चुके हैं जैसे कि शान्त घाटी सम्बन्धी (1970), मुल्लापेरियार बांध से संबंधित, चेलियर नदी सम्बन्धी (1963), कोको कोला कम्पनी द्वारा अत्यधिक जल के दोहन सम्बन्धी (1998)। लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि जल और जीवन के बीच सामंजस्यपूर्ण स्थिति को बनाए रखने के लिए आंदोलनों की उत्तरजीविता और चिरंतरता। जिसके अभाव ने अविवेकपूर्ण विकास के सोच को हावी होने दिया है। इस सन्दर्भ में चिपको आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन आदि को भी सम्मिलित किया जा सकता है। तमिलनाडु में नाभिकीय उर्जा संयंत्रों की स्थापना के विरुद्ध आन्दोलन भी विकास के वैकल्पिक विचार को बढ़ावा देते हैं।

किन्तु, ऐसी अविरत या संपोषित विकास की नीतियों की स्थापना और सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि इन आंदोलनों की निरंतरता कितनी है। इस निरंतरता का अभाव अविवेकपूर्ण नीति के प्रस्तावों को उभरने और स्थापित होने का मौका देती है, जो प्रकृति और जीवन के बीच सामंजस्यपूर्ण नीतिओं को नकारते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का वैश्विक तापन से मुकाबला करने संबंधित पर्यावरणीय विमर्शों से बाहर आना ऐसी ही ताकतों का उदाहरण है।

निष्कर्षतः जल (प्रकृति) और जीवन की निरंतरता इस बात पर निर्भर करेगी कि आन्दोलन किस निरंतरता से इनके बीच सामंजस्यपूर्ण संबंधों और वैकल्पिक विकास की वकालत करते हैं। यह निश्चयवादियों और प्रकृतिवादियों के बीच वैकल्पिक सोच को ढूंढने और स्थापित करने के लिए किस सीमा तक परिवर्तित कर पाते हैं। अतः जल, जीवन और आन्दोलन की उत्तरजीविता इनकी निरंतरता पर अनिवार्य रूप से आश्रित है।

♦♦♦♦♦

संस्कृति, संसाधन एंव संचयन

गरिमा शर्मा
सह–शोधार्थी, विकासशील राज्य शोध केन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय

सैकड़ों, हजारों तालाब अचानक शून्य से
प्रकट नही हुए थे।
इनके पीछे एक इकाई थी बनवाने वालों की,
तो दहाई थी बनाने वालों की।
यह इकाई, दहाई मिलकर सैकड़ा, हजार बनाती थी
पिछले दो सौ बरसों में नए किस्म की
थोड़ी सी पढ़ाई पढ़ गए
समाज ने इस इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार को
शून्य ही बना दिया।
(आज भी खरे हैं तालाब, अनुपम मिश्र)

एक लाख प्रतियों के प्रकाशन के पश्चात प्रसिद्ध गांधीवादी अनुपम मिश्र की पुस्तक *आज भी खरे हैं तालाब* की प्रसिद्धि अध्ययन जगत में धूमिल नहीं हुई है। तालाबों के माध्यम से जल संचयन की भारतीय पारंपरिक संस्कृति का विवरण करते हुए श्री अनुपम मिश्र द्वारा इस बात को पुरजोर रुप से प्रस्तुत किया गया है कि पारंपरिक जल संचयन पद्धति वर्तमान समय में भी हजारों गांवों और कस्बों की जीवन रेखा के रूप में कार्य कर रही है। जल संकट के निवारण के रूप में भारतीय संस्कृति की महत्ता का विवरण श्री अनुपम मिश्र की पुस्तक अनूठे रूप में प्रस्तुत करती है तथा भारतीय संस्कृति की सौहार्द्र की भावना, जिसमें सामुदायिकता की विशेषता अंतर्निहित है, को परिलक्षित करती है।

संस्कृति के विषय को समाज वैज्ञानिकों ने नवीन रूप में अध्ययन कर शोध के नए पहलुओं को उजागर किया है। के. मिल्टन द्वारा अपनी पुस्तक *एनवायरनमेंटलिज्म एंड कल्चरल थ्योरी* के अंतर्गत पर्यावरणीय समस्याओं के अध्ययन हेतु सांस्कृतिक उपागम को समाज विज्ञान में प्रचलित उपागमों से भिन्न एवं अधिक महत्वपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया गया है। सांस्कृतिक उपागम के द्वारा पर्यावरण का अध्ययन एक संतुलित एवं संपोषणीय समाज के विकास की खोज करना होता है। इसके अंतर्गत पर्यावरण के संरक्षण एवं उनसे सम्बन्धित संकटों के निवारण को संस्कृति के दृष्टिकोण से अध्ययन करने का प्रयास किया जाता है। संस्कृति भूत, वर्तमान एवं भविष्य को जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी मानी जा सकती है जो किसी समाज के आचार, विचार एवं व्यवहार का सम्मिश्रण होती है, जिसे समाज द्वारा चिरस्थाई रूप में आत्मसात कर लिया जाता है। विभिन्न सभ्यताओं का उद्भव एवं पतन भी संस्कृति की आत्मा का अंत नहीं कर सकती है। यह जनमानस की भारतीय संस्कृति अहिंसा एवं सौहार्द्र पर आध

ाारित है, जिसके अंतर्गत व्यक्ति से पहले समुदाय को अत्यधिक महत्व दिया गया है।

यह संस्कृति व्यक्तिपरक न होकर सामुदायिकता की भावना पर आधारित है। इस सौहार्द्र की भावना को मात्र मानव का मानव के प्रति ही नहीं वरन् मानव एवं प्रकृति के मध्य संबंध के रूप में भी देखा गया है। मानव के निर्माण को भी पंचतत्व पर आधारित माना गया है। अतः भारतीय संस्कृति में भौतिकवाद की अपेक्षा आध्यात्मिकता पर अधिक बल दिया गया है। पाश्चात्य विचारकों द्वारा मानव एवं पर्यावरण को मात्र भौतिकवादी दृष्टिकोण से परिभाषित करने पर बल दिया है, जहाँ प्रत्येक मानव अन्य की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्ति हेतु संघर्षरत है। वर्ग संघर्ष की इस विचारधारा ने पर्यावरण के प्रति चिंतन को धूमिल कर दिया।

भारतीय संस्कृति में मात्र वेदों में ही नहीं, वरन् बुद्ध एवं महावीर से संबंधित अन्य कथाओं में भी प्रकृति के संसाधनों के प्रति आस्था एवं स्नेह को परिभाषित किया गया है। प्रकृति के अमूल्य संसाधनों में जल एक मात्र ऐसा संसाधन है जिस पर भविष्य में युद्ध तक करने की संभावनाएं विभिन्न विचारकों द्वारा प्रस्तुत की गई है। ब्रह्मचलानी ऐसा मानते हैं कि तृतीय विश्व युद्ध जल संकट को लेकर ही होगा। इस स्थिति को हाल ही में दक्षिण अफ्रीका के अंतर्गत अनुभव किया गया है। परंतु जल को लेकर आज भी उस चेतना का अभाव देखा गया है जो जल संकट के निवारण हेतु नए कदमों को प्रोत्साहित करे। नीति आयोग के उपाध्यक्ष राजीव कुमार ने हाल ही में आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई जल से संबंधित रिपोर्ट में यह विचार स्पष्ट किया कि *"वायु प्रदूषण के संबंध में भारत के अंतर्गत उच्च स्तरीय जागरूकता को देखा गया है, परंतु जल से संबंधित संकट के प्रति उस जागरूकता का अभाव है"*।

नीति आयोग की इस रिपोर्ट के अनुसार भारत का 80 प्रतिशत भूमिगत जल प्रदूषित हो चुका है तथा 600 मिलियन भारतीय उच्च स्तरीय जल संकट के तनाव से ग्रस्त है। प्रत्येक वर्ष दो लाख व्यक्ति स्वच्छ जल तक पहुंच के अभाव में अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं। भारत के अंतर्गत 21 प्रतिशत बीमारियां जल से संबंधित हैं तथा 2020 तक 21 ऐसे शहर होंगे जहाँ भूमिगत जलस्तर शून्य की स्थिति तक पहुँच जाएगा। यह एक चिंताजनक भविष्य की ओर संकेत करते हैं, जिसके लिए वर्तमान से ही जागरूक होना आवश्यक हो गया है। भारत के अंतर्गत संसाधनों की कमी नहीं वरन् उनके उचित उपयोग करने वाली सामुदायिक भावना से ओत–प्रोत भारतीय संस्कृति धूमिल हो गई है। हड़प्पा सभ्यता वाली सुव्यवस्थित भारतीय संस्कृ ति वर्तमान समय में जल प्रबंधन मे असमर्थ रहे, यह स्वंय में हास्यास्पद स्थिति होगी।

हड़प्पा सभ्यता से लेकर मध्यकालीन रजवाड़ो एवं राजवंशो की सभ्यता में स्नानागार, तालाब, कुंड एवं कुएं निर्मित कराना पुण्य का कार्य माना जाता था। इन तालाबों ने ही राजस्थान जैसे मरुस्थल को भी जल रुपी जीवन प्रदान कर रखा था। श्री अनुपम मिश्र अपनी पुस्तक में व्याख्यान करते हैं कि 5वीं सदी से 15वीं सदी तक देश के अंतर्गत तालाब बनाने की एक प्रक्रिया शुरू हो गई थी, जिसे 15वीं सदी में बाधाओं का सामना करना पड़ा। 18वीं और 19वीं

सदी के अंत तक भी जगह–जगह पर तालाब बन रहे थे। यह तालाब मात्र उत्तरी भारत में ही नहीं वरन् दक्षिण भारत में भी निर्मित हो रहे थे। मद्रास प्रेसिडेंसी में 53000 तालाबों का आंकड़ा मिलता है तथा यह तालाब मात्र गांव के अंतर्गत ही नहीं बड़े शहरों में भी निर्मित किए गए थे। दिल्ली के अंतर्गत ही 350 छोटे–बड़े तालाबों का वर्णन श्री अनुपम मिश्र द्वारा अपनी पुस्तक के अंतर्गत किया गया है।

इन तालाबों का निर्माण समुदाय द्वारा किया जाता था तथा इन के प्रयोग पर भी समुदाय का अधिकार होता था। तालाब निर्माण का इतिहास भारतीय संस्कृति के इतिहास के पृष्ठों पर अनेक लोक–कथाओं के रूप में अंकित है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत प्रकृति के प्रति आस्था एवं स्नेह वर्तमान समय में आधुनिकता की भागदौड़ में लुप्त हो गई है। मशीनीकृत मानव ने भावनात्मक मानव को पीछे छोड़ दिया है, जहाँ प्रकृति के अंतर्गत संपूर्ण मानव जीवन के सार को ढूंढने का प्रयास किया जाता था। आधुनिकता पर निर्भर होकर ही मात्र जल संचयन की समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता है वरन् परंपरागत विधियां भी इन समस्याओं का समाधान करने में सक्षम सिद्ध हो सकती है, जिसे हाल ही में दिल्ली स्थित सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट के अध्ययन द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसमें महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के ऐसे सूखाग्रस्त गांवों का अध्ययन किया गया जिनमें जल संचयन की परंपरागत विधियों का उपयोग करके न केवल जल संकट की समस्या का निवारण किया वरन् आय में भी वृद्धि प्राप्त करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की। महाराष्ट्र के हिवरे बाजार नामक गांव द्वारा जल संचयन की नीति को 1990 में ही अपना लिया गया था आज 25 वर्षों में इस गांव को कभी भी जल संकट का सामना नहीं करना पड़ा। जहां अन्य क्षेत्रों में भूमिगत जल 300 से 400 फीट गहराई पर प्राप्त होता है वहीं इस गांव में मात्र 20 से 40 फीट तक जल स्तर प्राप्त हो सकता है यह अपने आप में समुदाय के स्तर पर जल संचयन करने के लाभ के प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करता है। संस्कृति समाज का दर्पण है, अतः इसका तर्पण नहीं किया जा सकता वरन् यह आने वाली पीढ़ी को अर्पण किया जाता है।

♦♦♦♦♦

जल की राजनीति

कुँवर प्रांजल सिंह
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

इस शीर्षक में प्रयोग किये गये पद 'राजनीति' का मौलिक उद्देश्य यह है कि जल एक राजनीतिक मुद्दा कैसे और क्यों है? साथ ही किस प्रकार जल से संबंधित निर्णय राजनीतिक बन जाते हैं? यह इस शीर्षक की प्राथमिक चिंता भी है तथा इसके राजनीतिक बनने की संभावना से किस प्रकार की वैकल्पिक राजनीति, संसाधन के नाम पर की जाती है, इस लेख का यह मौलिक प्रश्न भी होगा। प्रथम दृष्टया यह कहा जा सकता है कि राजनीति की परिभाषा में विकास स्वयं उसकी परिभाषा की अभिव्यक्ति है तथा उसकी प्रक्रिया का ही परिचायक भी बनता जा रहा है जिसका समुचित ढंग से परिभाषा के तौर पर अलग–अलग अर्थ समझना ठीक उसी प्रकार भ्रम साध्य कार्य है जैसे कि हंस दूध को पानी से अलग कर देता है। इस कथन में वस्तुस्थिति यह है कि हंस को यह करते हुए किसी ने देखा नहीं है परन्तु यह मान्यता रही है कि ऐसा हुआ है। इस पूरे सन्दर्भ का आशय यह है कि विकास राजनीति के सत्ता पक्ष का सार भी हो सकता है तथा आधार भी बना हुआ है। लेकिन सामान्य जन जिनका कार्य इस विकास की राजनीति में केवल मत देने से संबंधित है, जहाँ उनके लिए विकास का तात्पर्य वस्तुतः जल की कमी और अधिकता से उत्पन होने वाली परिस्थितियों जैसे सूखा, बाढ़, पलायन इत्यादि से कैसे निपटा जाए आदि से है। यहाँ विकासमय राजनीति के दो द्वंद भी है परन्तु परिभाषा का केन्द्र राजनीतिक ही है।

इस द्वंद्व के संदर्भ में राजनीति दो प्रकार से परिभाषित की जा सकती हैः प्रथम, दोषारोपण की राजनीति तथा द्वितीय, वितरण की सहमति की राजनीति। इन दोनों पक्षों का आयाम मानवीय आयामों तथा उसके अधिकार से जुड़ा हुआ है जिसका आयाम मानवधिकार के मुद्दे से भी जुड़ा हुआ है। सामान्यतः यह देखा गया है कि जल के सन्दर्भ में उठने वाले मुद्दे चाहे वो राज्य की नीतियों से होते हुए भारतीय संघवाद के गलियारों में शक्ति के साझेपन का हो या उसके साझे के कारण होने वाले विवादों को लेकर हो, या बड़े बाँधों का प्रश्न हो जहाँ इनके निर्माण से लेकर इनके क्रियान्वयन तक के सम्पूर्ण कार्यों का प्रत्यक्ष संबंध राजनीति से ही होता है। वस्तुतः इन जल आधारित समस्याओं के राजनीति से जुड़े होने के कारण नौकरशाही से भी इनका प्रत्यक्ष जुड़ाव हो जाता है। इन समस्याओं में एक एजेंडा तो पूर्णतः स्पष्ट रहता है कि राजनीति की यह संपूर्ण प्रक्रिया विकास के नाम पर की जाती है। परन्तु राजनीति की इस प्रक्रिया में जहाँ रिक्तता का अधिक अनुभव किया जाता है वह कहीं न कहीं राजनीतिक प्रक्रिया में समाज की सहभागिता से संबंधित है। जल के प्रश्न पर समाज की सलाह एवं परामर्श लेना उतना ही आवश्यक है जितना कि राजनीतिक सहभागिता के अन्य विषयों पर समाज से अपेक्षा की जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो विकास की नीतियों में समाज की संरचना तथा

उनके बीच अभाव से अनुभव लेते हुए उनकी समस्याओं का निवारण खोजने की आवश्यकता है। यहाँ हमें विकास को ना तो हर समस्या का समाधान के रूप में देखना होगा और ना ही उसके विकल्प के रूप में। विकास के नाम पर आ रही त्रासदी से भी हमें कुछ सीखने की आवश्यकता है। इसका सैद्धान्तिक पक्ष यह भी है कि सामाजिक विज्ञान में जिस वैज्ञानिक ध ाारणा के अनुसार प्रत्यक्षवादी सामाजिक यथार्थ को विज्ञान के भैतिक यथार्थ जैसा मानने की पहल करते हैं जिसके अन्तर्गत मानवीय समाज के बीच चल रहा कोलाहल कहीं–न–कहीं गौण हो जाता है और समाज के बीच आये किसी भी प्रकार के असन्तोष को बिना किसी अनुभव का हिस्सा बनाये हम उसे विकास की विशिष्ट परिभाषा में ढाल देते हैं। जो तकनीक के तर्क पर इस तरह प्रस्तुत की जाती है जिसका आधार समाज के अनुभव पर आधारित न होकर एक भौतिकवादी लालसा से भरा होता है। दूसरा कारक यह है कि प्राकृतिक आपदाओं के बाद वितरण की राजनीति में अनुदान इतना अधिक प्रभावी हो जाता है कि वह समाज और सत्ता के सबंध को महत्वहीन कर देता है। विज्ञान वाली मानसिकता सामाजिक जीवन में प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न अंसतोष से मुक्ति प्राप्त करने की एक रणनीति भी है।

♦♦♦♦♦

जल और जेंडर

रजनी एवं राखी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

जल एक आधारभूत आवश्यकता है, जिसका कोई अन्य विकल्प नहीं है। जल और जेंडर दो ऐसे तत्व है जो आपस में एक दूसरे से गहनता से जुडें हुए हैं। जहां जल प्रकृति की देन है तो वहीं जेंडर समाज द्वारा बनाई गई संस्कृति की देन। जल और स्त्री दोनों जीवनदात्री है जहां दोनो ही मनुष्य को जीवनदान देने का कार्य करते है और इसी प्रकृति का परिष्कृत रूप से विकृत रूप में परिवर्तन से बनी संस्कृति जल संसाधन और जेंडर को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आ रही है। मनुष्य ने मूल प्रकृति का दोहन कर जल और स्त्री के स्तर में कमी के साथ दोनो के स्वरूप को विकृत किया है। उदाहरण स्वरूप यमुना, गंगा एवं भारत में अन्य नदियां।

इसी संस्कृति के बदलते प्रारूपों के चलते स्वच्छ जल का प्रावधान ही जीवित रहने का अधिकार है। यद्यपि हाल के वर्षों में यह एक उभरता मुद्दा रहा है विशेष रूप से – स्वच्छ जल की कमी का। जल की कमी एक स्थिति है, जहाँ एक ही समय में उपलब्ध जल की आपूर्ति में कमी आई है और माँग में वृद्धि हुई है। जिसके द्वारा जेंडर को आधारभूत रूप मिलने में आसानी हुई है, जहाँ स्त्रियों की स्थिति शुरू से ही जल को लेकर दयनीय देखी जाती रही है फिर भले ही वह क्षेत्र शहर का रहा हो या ग्रामीण। भारत में दिल्ली, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, महाराष्ट्र जैसे इत्यादि राज्यों को इस समस्या से जूझना पड़ रहा है। जहां जल संसाधन को एकत्रित करना महिलाओं के कार्य के रूप में देखा जाता है।

जल और जेंडर का परिप्रेक्ष्य जो लिंग भूमिकाओं और उनके बीच के संबंधों की समझ को स्पष्ट करने का प्रयास करता है और यह परिप्रेक्ष्य कैसे जल और स्वच्छता में होने वाले व्यवध ाान से प्रभावित होते हैं अथवा प्रभावित करते हैं, को अधिक स्थायित्व और संसाधन की दक्षता को सुनिश्चित कर सकता हैं, जिसके कारण लाभार्थियों की संख्या में वृद्धि की जा सकती हैं। अनुभव से पता चलता है कि जेंडर हस्तक्षेप जिसमें पुरुषों और महिलाओं दोनों के विचार और गतिविधि शामिल हैं, आम तौर पर बेहतर काम कर सकते हैं। जल जेंडर से तटस्थ नही है। जल संसाधनों का प्रबंधन, जेंडर परिप्रेक्ष्य के बिना अधूरा है, क्योंकि घरेलू उपभोग, निर्वाह कृ षि, स्वास्थ्य और स्वच्छता में महिलाएं प्रायः जल की प्राथमिक उपयोगकर्ता होती हैं। कई विषयों में महिलाएं बच्चों को शिक्षित करने, स्वच्छता बनाए रखने तथा बच्चों और परिवार के स्वास्थ्य में प्राथमिक भूमिका निभाती हैं। जल और जेंडर भूमिकाओं को समझने से जल व्यवध ाान और नीतियों की योजना बनाने में सहायता मिलेगी, जो इस बात पर आधारित हैं कि लोग अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जल के उपयोग में प्रयोग किए गए विकल्पों को कैसे और क्यों प्रयोग करते हैं।

महिलाओं और पुरुषों के पास बिजली और संपत्तियों की अलग–अलग पहुंच हैः निर्धन महिलाएं प्रायः सामान्य संपत्ति संसाधनों जैसे नदियों और झीलों का उपयोग करती हैं जो पुरुषों या अन्य महिलाओं की तुलना मे श्रेष्ठकर होती हैं। क्योंकि यह प्रकृति के स्रोत जल का प्रयोग करतीं है न की दोहन। वहीं भूमि का स्वामित्व जिस पर वर्तमान या भविष्य का जल स्रोत स्थित है, आय के डिजाइन, प्रबंधन और वितरण पर निर्णय को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है।

परामर्श में महिलाओं को प्रायः सुना नहीं जाता हैः– लोग उन सुविधाओं का उपयोग नहीं करेंगे जो उनकी आवश्यकताओं के लिए अनुपयुक्त हैं। क्योंकि माँग में उत्तरदायी दृष्टिकोण, परामर्श और लोगों के विभिन्न समूहों की विभिन्न आवश्यकताओं की स्वीकृति को दर्शाते हैं। अच्छा परामर्श और संचार प्रक्रिया, पारदर्शिता की प्रतिबद्धता को इंगित कर सकते है जो जल संसाधनों पर संघर्ष को रोकने में मदद कर सकती है। हालाँकि, परामर्श प्रक्रियाओं में जेंडर संवेदनशील होना चाहिए क्योंकि महिलाएं सार्वजनिक परामर्श में बात करने में असहजता का अनुभव कर सकती हैं या ऐसा करने का उन्हे कोई अनुभव न हो क्योंकि पहले से ही महिलाओं को पितृसत्ता के चलते सामाजिक भागीदारी में शामिल नही किया जाता था परंतु 21वीं शताब्दी में इस परिस्थिति में सुधार होने के बाद अब इसमें महिलाओं की गतिविधि को शामिल किया जाने लगा है परंतु इस गतिविधि में भी उनके स्वयं के निर्णय न के बराबर ही होते है।

निर्णय–निर्माण व प्रबंधन में महिलाओं का सम्मिलित न होनाः– प्रायः बजट और नियोजन पुरुष के नियंत्रण में होते हैं और इसके परिणामस्वरूप पुरुषों के मुकाबले जल के उपयोग में महिलाओं को कम महत्व दिया जाता है। अगर महिलाएं प्रबंधन में भाग नहीं लेती है, तो वे परियोजना या कार्यक्रम आरंभ होने से पहले अधिकार और विशेषाधिकार खो देती हैं और परिणामस्वरूप पुरुषों पर अधिक निर्भर होने लगती हैं।

बहुपत्नित्व को बढावाः– जल की आपूर्ति को पूरा करने के उद्देश्य से एक पुरूष के द्वारा कई विवाह किए जाने की प्रथा आज भी प्रचलन में है जिसका उद्देश्य जल आपूर्ति को पूरा करना है, इस आपूर्ति में महिलाएं स्वयं की गतिविधियों को घर तक ही सीमित कर लेती हैं जिसका प्रभाव रूढ़िवादी या पितृसत्तात्मकता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जल में जेंडर की मुख्यधारा के लिए नए दृष्टिकोणः

जेंडर उत्तरदायी बजट और लेखा परीक्षा को नए जेंडर मुख्यधारा की पहल के रूप में बढ़ावा दिया जा रहा है। इनमें बजट आवंटन के विश्लेषण को शामिल किया गया है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि विशेष सेवाओं से कौन–कौन लाभान्वित हो रहा है। यह वर्तमान कार्यक्रमों और नीतियों का निरीक्षण का एक उपयोगी तरीका हैं, यह योजना और निरूपण के चरणों में बजट आवंटन के लिए मानदंड स्थापित करने में उपयोगी हैं। इन व्यवधानों से लाभार्थियों द्वारा विकसित जेंडर–संवेदनशील संकेतक भी व्यापक रूप से प्रचारित किए जा रहे

हैं। इनमें जेंडर और जल सूचकांक के साथ–साथ स्वास्थ्य, उत्पादकता, सशक्तिकरण और कल्याण में सुधार के गुणात्मक अनुसंधान शामिल हैं।

इस प्रकार जेंडर और जल के विश्लेषण का उद्देश्य व्यवधान के विशेष क्षेत्र में जल संसाधनों के उपयोग और प्रबंधन में महिलाओं और पुरुषों की भूमिका को समझना है और दोनो की समानुपातिक भागीदारी को सुनिश्चित करना है। उदाहरण के लिए, महिलाओं की जल के संग्रह और घर के भीतर स्वच्छता में अधिक भूमिका होती है। जिसमें स्थानीय समुदाय और उससे आगे के निर्णय लेने में पुरुष अधिक सक्रिय होते है। जेंडर दृष्टिकोण का अर्थ है सामाजिक संबंधों और शक्ति की गतिशीलता की समझ और महिलाओं को लक्षित करने के बजाए परियोजनाओं और कार्यक्रमों को समायोजित करना। जिसे इस तरह से आगे बढ़ाना चाहिए कि स्त्री और पुरूष दोनो का सहयोग समानुपात में सम्मानित किया जाए। प्रारंभिक विश्लेषण को गुणात्मक–मात्रात्मक रूप से यौन असंगत आकंडों के माध्यम से पुरुषों और महिलाओं की विभिन्न प्राथमिकताओं, ज्ञान और बाधाओं को समझना चाहिए। सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन (Participatory Rural Assessment) जैसी भागीदारी पद्धतियाँ समुदायों के भीतर विभिन्न समूहों के दृष्टिकोण को लाने के महत्वपूर्ण तरीके हैं। उदाहरण के लिए, गाँव के मानचित्रण की तकनीकी भागीदारी वर्तमान जल स्रोतों और स्वच्छता सुविधाओं की पहचान करने का एक उत्तम माध्यम है जिसका आयोजन महिलाओं और पुरुषों दोनों के साथ मिलकर किया जा सकता है।

♦♦♦♦♦

जल संकटः प्रकृति के आधार पर समाधान

जया ओझा
शोधार्थी, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विश्व की सभी सभ्यताएं नदियों, समुद्रों या जल के किसी ऐसे दूसरे स्त्रोतों के आस–पास ही विकसित हुईं हैं, परंतु भारत ने जल के महत्व को जिस तरह समझा और सम्मान दिया वह अद्वितीय है। भारत में जल को "देवता" (देने वाला) का स्थान दिया गया है, वहीं नदियों को माता का स्वरूप तथा समुद्र को रत्नागर अर्थात 'रत्नों का घर' कहा गया है। इस प्रकार भारत की संस्कृति "जल संस्कृति" रही है। जल जीवन को प्रवाह व गति देता है, बिना जल के हम अपने जीवन की कामना नहीं कर सकते।

विश्व के क्षेत्रफल का लगभग 71 प्रतिशत भाग जल से भरा हुआ है परंतु पीने योग्य जल मात्र 3 प्रतिशत ही है, इसमें से भी मात्र 1 प्रतिशत मीठे जल का ही वास्तव में हम उपयोग कर पाते हैं। आर्थिक विकास, औद्योगीकरण और जनसंख्या विस्फोट से जल का प्रदूषण तथा जल की खपत बढ़ने के कारण जल चक्र बिगड़ता जा रहा है। जलवायु परिवर्तन, नदियों पर बांध, तालाब व पोखरों पर अतिक्रमण करके हमने जल पुनर्भरण के सभी रास्तें बंद कर दिए हैं। इसलिए आज संपूर्ण विश्व में जल के लिए कोहराम मचा हुआ है और आने वाले समय में यह संकट और बड़ा होगा।

UNICEF (United Nations Children's Emergency Fund) की हाल ही में जारी की गई रिपोर्ट के अनुसार 2050 तक मध्य भारत में उपलब्ध जल का 40 प्रतिशत भाग समाप्त हो चुका होगा। आज औद्योगिक गतिविधियों के लिए विश्व में अपनी पहचान बना चुका दक्षिण भारत के शहर बेंगलुरु में तेजी से जल स्तर घट रहा है। यहां स्थिति इतनी भयंकर हो गई है कि इस शहर में "डे जीरो" लागू करने की बात भी की गई, अर्थात शहर में जल सप्लाई बंद करके जल आपूर्ति का प्रयास करना। जानकारों का मानना है कि बेंगलुरु में समस्या वहां के निवासियों द्वारा ही पैदा की गई है, उन्होंने जल का सीमा से अधिक दोहन किया, जिससे जल संकट जैसी समस्याओं का जन्म हुआ है।

भारत के पूर्वी उत्तर प्रदेश को जल आधिक्य का क्षेत्र माना जाता था, परंतु आज वह भी समाज और सरकार के अनियोजित विकास व अनियंत्रित जल दोहन के कारण संकटग्रस्त हो गया है। केवल भारत ही नहीं वरन दक्षिण अफ्रीका के शहर के केपटाउन में भी जल संकट विकट रूप ले चुका है, वर्षा न होने के कारण यह शहर सदी के सबसे भयंकर सूखे से जूझ रहा है।

संयुक्त राष्ट्र का मानना है कि जल की समस्या जलवायु परिवर्तन के अतिरिक्त सदी का सबसे

बड़ा संकट है, विश्व की 20 प्रतिशत से अधिक आबादी जल के संकट से जूझ रही है। सन 2050 तक विश्व भर में शहरी क्षेत्रों में पानी की मांग 80 प्रतिशत तक पहुंच जाएगी। केंद्रीय भू–जल बोर्ड का मानना है कि साल दर साल घट रही वर्षा से भूगर्भीय जल का स्तर अत्यधिक कम हो गया है। देश के 55 फ़ीसदी कुएं सूख चुके हैं तथा भूगर्भीय जल का स्तर 54 फ़ीसदी तक कम हो चुका है।

जल संकट के कारण

1. देश में कोई ठोस जल संरक्षण नीति नहीं है।
2. देश में बारिश का 65 प्रतिशत जल बहकर समुद्र में चला जाता है।
3. औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए जल स्रोतों का दोहन किया जाता है।
4. तालाबों और झीलों पर अतिक्रमण किया जा रहा है।
5. जलवायु परिवर्तन का प्रभाव जल स्रोतों पर भी पड़ता है।

संयुक्त राष्ट्र ने हाल ही में ''विश्व जल विकास रिपोर्ट 2018'' जारी की जिसके अनुसार विश्व की आधी आबादी ऐसे क्षेत्रों में रहने के लिए मजबूर है जहां जल की भारी समस्या है। इस रिपोर्ट के अनुसार दुनिया भर में हर साल पानी की मांग 1 फीसदी की दर से बढ़ रही है, अगले दो दशकों में मांग में और बढ़ोतरी हो सकती है। इस रिपोर्ट का मानना है कि पानी की मांग कृषि से अधिक औद्योगिक व घरेलू आवश्यकताओं के लिए तीव्रता से बढ़ रही है ।

वहीं संयुक्त राष्ट्र का मानना है कि मानवीय गतिविधियों के चलते 1990 से अब तक 64–71 प्रतिशत आर्द्रभूमि क्षेत्र (Wetland) लुप्त हो चुका है। भारत, अमेरिका, चीन, ईरान व पाकिस्तान जैसे देश वैश्विक भूजल का 65 प्रतिशत दोहन करते हैं।

इस प्रकार आज भारत ही नहीं बल्कि दुनिया के अनेक देश जल संकट की पीड़ा से त्रस्त हैं। भारत सहित अनेक वैश्विक दक्षिण देशों के अनेक गांव में आज भी पीने योग्य शुद्ध जल उपलब्ध नहीं है।

समकालीन समय में जल के संकट से बचने के लिए प्रकृति के आधार पर समाधान करने की आवश्यकता है, इनमें से कुछ उपायों को रेखांकित किया जा सकता है:

1. अपने देश के जमीनी क्षेत्रफल में से मात्र 5 प्रतिशत ही गिरने वाले वर्षा के जल का संग्रहणकर सके तो 1 बिलियन लोगों को 100 लीटर जल प्रति व्यक्ति प्रतिदिन मिल सकता है।
2. जल, जमीन और जंगल तीनों एक दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं, इनको एक साथ देखने, समझने व प्रबंधन करने की आवश्यकता है।

3. जल संरक्षण कार्य को सामाजिक संस्कारों से जोड़ा जाना चाहिए।
4. अत्यधिक भूजल दोहन पर रोक लगाने की आवश्यकता है। साथ ही तालाब व झीलों के जल का उचित उपयोग करने की आवश्यकता है।
5. जल को प्रदूषण से मुक्त रखने की आवश्यकता है ।

वर्षा का 85 प्रतिशत जल नदियों के माध्यम से समुद्र में बह जाता है, यदि इस जल को धरती के भीतर पहुंचा दिया जाए तो इसके दो लाभ होंगेः प्रथम – बाढ़ की समस्या कम होगी, तथा द्वितीय – भूजल का स्तर भी बढ़ेगा।

जल संकट समसामयिक समय की सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है जिसका निवारण करना आज के समय में बेहद आवश्यक हो गया है, क्योंकि बिना जल मनुष्य का जीवन संभव नहीं है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या, बढ़ता औद्योगीकरण, प्राकृतिक स्रोतों का सूखना, अनियोजित विकास, फैलते शहरीकरण के अतिरिक्त वैश्विक ताप/ग्लोबल वॉर्मिंग ने जल की समस्या को विकराल बना दिया है, भूजल के अत्यधिक दोहन से ना केवल पानी की कमी हुई है बल्कि जल प्रदूषण भी काफी बढ़ गया है। इस संकट से बचने के लिए सरकार व समाज दोनों को कार्य करने की जरूरत है। भूजल दोहन अनियंत्रित तरीके से न हो, इसके लिए आवश्यक कानून अपेक्षित हैं।

♦♦♦♦♦

जल सघंर्षः एक नया स्वरूप

पंकज
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत आज विनाशकारी सूखे के दौर से गुजर रहा हैं। देशभर की कुल आबादी का लगभग एक चौथाई भाग इससे बुरी तरह प्रभावित है। हाल ही में नीति आयोग के एक अध्ययन में यह चेतावनी दी गई है कि भारत इतिहास के सबसे गहरे जल संकट का सामना कर रहा है और यह दर्शाया गया है कि यदि व्यापक कदम नहीं उठाए गए तो 2030 तक पीने योग्य जल की आपूर्ति खत्म हो जाएगी और इस जल संकट के कारण देश के सकल घरेलू उत्पाद में 2050 तक 6 फ़ीसदी कमी आने की संभावना है। जल संकट को व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाए तो इसका प्रभाव अंतर राज्य संबंधों के साथ– साथ समाज के स्तर पर भी तनाव और संघर्ष को उत्पन्न कर रहा है। जल संघर्ष को लेकर विभिन्न विद्वानों के द्वारा अलग–अलग आंकलन प्रस्तुत किए गए हैं। जिनका वर्णन करना यहाँ आवश्यक है। और साथ ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में जल संघर्ष का अध्ययन किया जाना भी आवश्यक है।

जल सघंर्ष के स्वरूप

जल संघर्ष को लेकर विभिन्न विद्वानों द्वारा निम्न स्वरूपों को प्रस्तुत किया गया है। प्रथम, जल संघर्ष तब उत्पन्न होता है जब इसके प्रयोगकर्ताओं में वृद्धि हो जाए, जबकि जल संसाधन में कमी देखने को मिले। इसका समष्टि स्वरूप नदी, झील हो सकता है, जबकि इसका व्यष्टि स्वरुप भूमिगत जल स्तर में कमी, गांव के कुओं का सूखना आदि है। इस संघर्ष का आरंभ तब होता है जब जल प्रयोगकर्ताओं को लगता है कि जल उपलब्धता में कमी आ रही हैं। यह संघर्ष मुख्यतः वर्षा की कमी, अत्याधिक सूखे के समय देखा जा सकता है।

द्वितीय, जल संघर्ष का अन्य रूप तब देखने को मिलता है जब नई विकास परियोजनाओं के लिए नियोजन प्रक्रिया को अपनाया जाता है। इसमें मुख्यतः दो प्रश्न उठते हैं। पहला, कि इस परियोजना के बदले में कितना जल और अन्य सुविधाएं प्रदान की जाएंगी और दूसरा इस परियोजना की लागत कौन चुकाएगा? इसमें समष्टि स्वरुप में राज्य होता है जबकि इसके व्यष्टि स्वरुप में नदी जल पर निर्भर किसान होते हैं। यह संघर्ष मुख्यतः नदी पर बांध परियोजना से जुड़ा होता है।

तृतीय, जहां पर जल का स्त्रोत पहले से उपयोग में है वहां जल संघर्ष तब जन्म लेता है जब उपस्थिति पदसोपान में परिवर्तन होता है, जबकि जल की आपूर्ति सामान्य बनी रहती हैं। इसमें संघर्ष की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब प्राथमिक प्रयोगकर्ता को लगता है कि वह पहले

ज्यादा भाग लेता था परंतु अब वह भाग कम मिल रहा है। जबकि द्वितीय प्रयोगकर्ता को लगता है कि वह पहले जल का कम भाग लेता था इसलिए उसे अब जल की अधिक आवश्यकता है। समष्टि स्तर पर यहां संघर्ष की स्थिति में नदी तट के ऊपरी बहाव वाले और नदी तट के निचले बहाव वाले कर्ता के मध्य देखने को मिलती है। इसमें व्यष्टि स्तर पर संघर्ष जल का कम हिस्सा मिलने वाले स्तर पर देखा जा सकता है जिसमें मुख्य नहर जल का प्रमुख स्त्रोत होता है।

चतुर्थ, जल संघर्ष का यह स्वरूप नदी पर जलीय विकास परियोजनाओं से जुड़ा हुआ है। इसमें बड़े बांधों से संबंधित परियोजना है। जिसमें बड़े स्तर पर भूमि अधिकार, विस्थापन, गुणवत्तापूर्ण भूमि एवं वृक्षों का ह्रास और धार्मिक भावना से संबंधित विषय सम्मलित हैं। इसमें एक बड़े समुदाय के जीवन पर संकट उत्पन्न हो जाता है।

पंचम, सरकारी नौकरशाह के द्वारा उत्पन्न किया गया जल संघर्ष का एक और अन्य रूप है जिसमें राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय नौकरशाहों के गठजोड़ के कारण एक राज्य को भेदभाव– पूर्ण रुप से प्राथमिकता दी जाती है। यह मुख्यतः भ्रष्टाचार के कारण जन्म लेता है। जल संघर्ष का अंतिम रूप नेताओं के स्वार्थ हित और चुनावी लाभ– हानि से प्रेरित रहता है। जिसमें नेता या दलों के द्वारा इस विषय का राजनीतिकरण किया जाता है जिसमें समष्टि और व्यष्टि दोनों स्तरों पर कुछ वर्गों के हितों की पूर्ति होती है जिसमें जमींदार वर्ग और उद्योगपति आदि सम्मिलित हैं (जॉन वुडः 2007)।

जल संघर्ष का नया स्वरूप

वर्तमान काल में नदी के जल प्रवाह में परिवर्तन और इसमें कमी आ रही है। यह परिवर्तन स्थानीय और विशिष्ट वर्ग के बहुउद्देशीय स्वार्थी हितों पर केन्द्रित होता है। उदाहरण के लिए नदी जल प्रवाह को उसके मूल प्रवाह से दूसरी ओर मोड़ दिया जाता है, जिसमें मूल प्रवाह क्षेत्र में सूखे की स्थिति उत्पन्न करके रेत के खनन का कार्य प्रारंभ किया जाता है। वर्तमानकालीन परिदृश्य में देखा जाए तो इसमें राजनेता, उद्योगपतियों एवं नौकरशाहों का गठजोड़ होता हैं, जिसमें स्थानीय समुदाय की उपजाऊ भूमि को खनन कार्य द्वारा बंजर बना दिया जाता है। दूसरा, जिस ओर जल प्रवाह को मोड़ा जाता है वहां उद्योगपतियों के कारखानों के लिए जल उपलब्ध कराया जाता है, जबकि एक साधारण किसान के खेतों की सिंचाई के नाम पर नहरों का निर्माण किया जाता है। तीसरा, जिस क्षेत्र में जल प्रवाह को परिवर्तित करने के लिए जल संग्रहण किया जाता उस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था, सामाजिक– सांस्कृतिक स्वरूप को भी हानि पहुंचती है।

संघर्ष की व्यापकता

इस जल संघर्ष की व्यापकता के आधार पर इसका मापन किया जाए तो यह अभी अपने प्राथमिक स्तर पर है। इसमें मुख्य संघर्ष जल के अभाव के कारण किसान वर्ग के मध्य दृष्टिगत होता है क्योंकि जल अभाव उत्पन्न होने का कारण न केवल नदी जल प्रवाह में कमी है, बल्कि अत्याधिक रेत खनन के कारण जलस्तर में तेजी से गिरावट आ रही है। दूसरी ओर संघर्ष उन किसानों और मजदूरों के मध्य भी है जिनकी भूमि पर खनन कार्य हो रहा है और जो मजदूर खनन कार्यों में शामिल है – अर्थात यह संघर्ष व्यष्टि स्तर पर है। इस संघर्ष का समष्टि स्वरूप तब सामने आएगा जब स्थानीय रूप से शोषित समाज नौकरशाही, राजनेताओं और इसमें प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित लोगों के विरुद्ध संगठित होकर लोकतांत्रिक आयामों के आधार पर अभिव्यक्ति करेगा।

♦♦♦♦♦

जल अभिशासन

सृष्टि एवं रामकिशोर
राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

जल हमारे संपोषणीय विकास में निर्णायक भूमिका का निर्वहन करता है। अमूल्य जल साधनों का प्रयोग और अनुप्रयोग पिछले कुछ दशकों में प्रभावशाली रूप से बढ़ गया है, जो कि जल की कमी को दर्शाता है। जल की गुणवत्ता का ह्रास तथा जलीय पारिस्थितिकीतंत्र का विनाश गंभीर रूप से पारिस्थिकीतंत्र की अखंडता, राजनीतिक स्थिरता, सामाजिक व आर्थिक विकास को प्रभावित करता है। गरीबी उन्मूलन, मानव तथा पारिस्थितिकी स्वास्थ्य व जल साधनों का प्रबंध जल के लिए केंद्रीय महत्व का विषय बन गया है जिसका कारण केवल जल आपूर्ति की प्राकृतिक कमी, उचित तकनीक व वित्त की कमी ही नहीं, बल्कि जल अभिशासन में नितांत असफलता भी है।

जल अभिशासन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व प्रशासकीय व्यवस्था के क्रम से संबंधित है जो समाज के विभिन्न स्तरों पर जल सेवाओं की उपलब्धता तथा संसाधनों का प्रबंधन व विकास की व्यवस्था करता है। इस प्रकार जल अभिशासन उन व्यवस्थाओं का समूह है जो जल साधनों के विकास व प्रबंधन से संबंधित निर्णय निर्माण पर नियंत्रण रखता है। जल अभिशासन पूर्ण रूप से एक राजनीतिक तत्व है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो स्थानीय, राज्यीय, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर राजनीतिक वास्तविकता को दर्शाती है। बढ़ते आर्थिक विकास ने जल पारिस्थितिकी की आवश्यकता को अधिक बढ़ा दिया है। जल की कमी जल अभिशासन को सुधारने के लिए एक आवश्यक कारण उपलब्ध कराती है। प्रदूषण जैसे तत्व शुद्ध गुणवत्ता वाले जल की कमी को बढ़ाते हैं जिसके कारण निर्धन लोगों तक शुद्ध जल उपलब्ध कराना कठिन हो जाता है। जो लोग जल के लिए उचित मूल्य अदा कर सकते हैं या जो अभिजन वर्ग के हैं उनके लिए जल की कमी नहीं है।

जब जल की मात्रा अत्यधिक सीमित है तब जल मांग व पूर्ति के बदलते प्रतिरूपों के अधीन अधिक आर्थिक गतिविधियों में समान विभाजन का एक आधार है। अन्य महत्वपूर्ण कारण भ्रष्टाचार है जो जल अभिशासन, जल उपलब्धता, आर्थिक वृद्धि व जल साधनों का पर्याप्त व समान विभाजन तथा वितरण में बाधा उत्पन्न करता है। भ्रष्टाचार को निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में अभिशासन की कमी के सूचक के रूप में माना जाता है। भ्रष्टाचार लोगों के लिए जल की गुणवत्ता को सुधारने के लिए सरकार के बजट को कम करता है। ऐसे कुछ कारणों के चलते ही जल अभिशासन व जल उपलब्धता का कार्य सुचारु रुप से नहीं हो पाता है। साथ ही जल संसाधनों के प्रबंध के विकेंद्रीकरण को कार्यक्रम का मुख्य तत्व माना जाता है। सरकार में विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति न होने के कारण बहुत से निर्णय निर्माण व प्रबंधन के

उत्तरदायित्व छूट जाते हैं। जल की मांग का स्तर निरंतर बढ़ रहा है। इन परिवर्तनों ने जल अभिशासन को प्रभावशाली बनाने की आवश्यकताओं को और अधिक बढ़ा दिया है।

यह धारणा बन चुकी है कि जल साधनों का अभिशासन व जल सेवाएं कार्यक्रम खुली सामाजिक संरचना के अंतर्गत अधिक प्रभावशाली हैं जो नागरिक समाज, निजी उद्योगों, मीडिया तथा अन्य प्रभावशाली व्यवस्थाएं जो सरकार को प्रभावित करती हैं, की सहभागिता को सक्षम बनाता है। आदेश व नियंत्रण तथा पदानुक्रम केंद्रीय राज्य व्यवस्था की विचारधारा, नागरिकों के लिए अब बाजार आधारित जल अभिशासन प्रतिमान में परिवर्तित हो रही है। जल संकट की समस्या को सुधारने के लिए जल अभिशासन को केंद्र में रखकर जल पारिस्थितिकी प्रबंधन, निर्धनता उन्मूलन तथा जलवायु परिवर्तन की समस्या को भी सुधारा जा सकता है। जल अभिशासन की समस्या को सुधारने के लिए जल प्रबंध कार्यनीति का चुनाव इस तरह करना होगा जिसमें विकेंद्रीकरण, एकीकरण तथा निजी क्षेत्र की भागीदारी सम्मिलित हो। जल अभिशासन की व्यवस्था को स्थापित करने के लिए सामाजिक, आर्थिक व पर्यावरणीय स्तर पर ऐसे कदम उठाने होंगे जो सूचना व्यवस्था, कानूनी व नियामक उपकरण, प्रबंधकारिणी योग्यताओं व संघर्ष समाधान व्यवस्था को अपना सके तथा जो समाज को परिवर्तनीयता, अनिश्चितता का प्रति उत्तर देने में सक्षम हो सके। ऐसी नीतियों व साधनों का निर्माण करना होगा जिन्हें निर्धन, विशेषकर निर्धन महिलाएं व बच्चे प्राप्त कर सकें। इस प्रकार जल अभिशासन की समस्याओं के सुधारों के अंतर्गत विकेंद्रीकरण निर्णय–निर्माण प्रक्रिया, पारदर्शिता को अपनाकर लोकतांत्रिक जल प्रबंधन व संपोषणीय जल सेवा उपलब्धता को अधिक सक्षम बनाया जा सकता है।

अतः सरकार को समझना होगा कि जनता को शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराना उसका नैतिक व प्राथमिक कर्तव्य है। लेकिन अब तक नीतिगत रूप से लगता है कि इस भाव को ही नगण्य कर दिया गया है। भूजल का अत्यधिक दोहन होना भविष्य के लिए खतरे का संकेत है। मनुष्य ने अपने स्वार्थ के कारण सदैव प्रकृति से छेड़छाड़ की है और उसका भरपूर दोहन किया है। एक आंकड़े के अनुसार 2030 तक जल की मांग जल आपूर्ति की अपेक्षाकृत दोगुनी होने का अनुमान है। ऐसे में हमें अभी से सतर्क हो जाना चाहिए ताकि भविष्य में जल की समस्या से बचा जा सके। वास्तव में इसके लिए आधारित स्तर पर सही अर्थ में काम करने की आवश्यकता हैं। ऐसे में जल के लिए काम करने वाली संस्थाएं व राज्य सरकारों के साथ–साथ केंद्र सरकार को भी इस दिशा में ध्यान देना होगा। सरकार व संस्थाओं को चाहिए कि सही इच्छाशक्ति के साथ इस कार्य में लग जाएं। हमें स्मरण रखना होगा कि प्रकृति से उतना ही लेना है जितनी हमें आवश्यकता है। नहीं तो एक दिन ऐसा आएगा जब प्रकृति का कोष रिक्त हो जाएगा और देने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं बचेगा। वास्तव में जल अभिशासन व जल उपलब्धता की समस्या के समाधान के लिए नागरिक समाज को भी अपना स्वैच्छिक योगदान देना होगा।

♦♦♦♦♦

II

जल प्रबंधन एवं अंतर्बंधन

जल ही जीवन है। जल और जीवन का यह बंधन इसके उचित प्रबंधन पर निर्भर करता है। वर्तमान विश्व जिस प्रकार के जल संकट से ग्रसित हो रहा है, उसके समाधान के लिए जल संरक्षण जितना उपयोगी है, उतना ही महत्वपूर्ण उसका प्रबंधन भी है। संरक्षित किए गए जल का उचित प्रबंधन किए बिना जल संरक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति में संशय है। यह भाग जल प्रबंधन की आवश्यकता के साथ ही प्रबंधन के परंपरागत उपायों से भिन्न कुछ वैकल्पिक उपायों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

भारत में नदी अंतर्बंधन परियोजनाः एक तथ्यात्मक विश्लेषण

आशीष कुमार शुक्ल
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रत्येक वर्ष भारत के एक बड़े हिस्से को बाढ़ व सूखे की समस्या का सामना करना पड़ता है, जिसमें बड़े स्तर पर जन–धन की हानि होती है। जब भी इस प्रकार की आपदाएँ आती हैं तो लोगों में आपदा प्रबंधन को लेकर बड़ी बहस शुरू हो जाती है, साथ ही राजनीतिक दलों के बीच आरोप–प्रत्यारोप का दौर शुरू हो जाता है। परन्तु इन सब के बाद भी किसी ठोस समाधान की ओर नहीं पहुंचा जाता। पिछले कुछ वर्षों में जल–जनित आपदाओं की निरंतरता ने भारत में नदी अंतर्बंधन परियोजना पर बहस को फिर से महत्वपूर्ण बना दिया है। देश में नीति निर्माताओं, बुद्धिजीवियों, शोधकर्ताओं तथा पर्यावरणविदों का एक वर्ग ऐसा है जिसके लिए यह परियोजना एक अवैज्ञानिक, अनियोजित तथा अप्रभावी प्रयास है, जो बड़े स्तर पर मानवीय, पर्यावरणीय तथा पारिस्थितिकीय समस्याओं को उत्पन्न करेगा, तो वहीं दूसरी ओर इनमें एक ऐसा वर्ग भी है जो इस परियोजना को भारत में बाढ़ व सूखे की समस्या के एक प्रभावी समाधान के साथ–साथ विकास के एक वैकल्पिक स्रोत के रूप में देखता है।

स्वतंत्र भारत में सर्वप्रथम वर्ष 1972 में तत्कालीन ऊर्जा व सिंचाई राज्यमंत्री श्री के. एल. राव ने कावेरी और गंगा नदियों को जोड़ने का प्रस्ताव रखा था, जिसके बाद नदी अंतर्बंधन कार्यक्रम को बल मिला। वर्ष 1982 में राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण (NWDA) के माध्यम से नामित विशेषज्ञों की एक समिति की स्थापना की गई थी ताकि जलाशयों, नहरों और नदी अंतर्बंधन की व्यवहार्यता से जुड़े सभी पक्षों के संबंध में विस्तृत अध्ययन, सर्वेक्षण और जांच पूरी की जा सके। परन्तु एक लम्बे समय तक इस विचार को व्यवहारिकता में नहीं बदला जा सका। 1999 में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने इस कार्यक्रम को ना केवल पुनर्जीवित किया अपितु जनसामान्य को इससे अवगत कराने के लिए इसका प्रचार–प्रसार भी किया।

सरकार द्वारा गठित कार्य बल ने इस परियोजना की लागत का अनुमान 5,60,000 करोड़ रुपए लगाया। वर्ष 2002 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए केंद्र सरकार को इस परियोजना को यथाशीघ्र पूरा करने के निर्देश दिये, जिसके अनुसार वर्ष 2003 तक उस योजना की रूपरेखा तैयार हो जानी चाहिए तथा 2016 तक इसे पूरा करना होगा। वर्ष 2012 में एक बार फिर यह परियोजना चर्चा के केंद्र में आ गयी जब सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार को आदेश दिया कि इस परियोजना पर समयबद्ध तरीके से कार्य किया जाए ताकि अनावश्यक विलंब के कारण इसकी लागत में अनापेक्षित वृद्धि ना हो। वर्ष 2016 में नरेन्द्र मोदी की सरकार द्वारा इस परियोजना पर गंभीरता से कार्य शुरू किया गया तथा उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के बीच केन–बेतवा को जोड़ने के लिए आवश्यक प्रक्रियाओं को पूरा किया गया है।

परियोजना से संबन्धित समस्याएँ

नदी अंतर्बंधन परियोजना के अंतर्गत हिमालयी तथा प्रायद्वीपीय क्षेत्र की 37 नदियों को जोड़ने के लिए 3000 से अधिक जल भंडारण संरचनाओं तथा लगभग 15000 किलोमीटर से अधिक लंबी नहरों के निर्माण में लगभग 5,60,000 करोड़ रुपए (अनुमानित) की लागत आएगी। अतः इन आंकड़ों से पता चलता है कि यह परियोजना अब तक की सबसे बड़ी परियोजनाओं में से एक है। इस परियोजना के सम्बन्ध में विशेषज्ञों तथा पर्यावरणविदों में कई स्तरों पर मतभेद रहा है।

- इस परियोजना के आलोचकों का मानना है कि यह परियोजना नदी जल के आधिक्य तथा ह्रास जैसे तर्कहीन तथ्यों पर आधारित है। इसमें नदी जल के आधिक्य का आधार केवल सिंचाई, जल आपूर्ति तथा पनबिजली आवश्यकताओं को बनाया गया है परन्तु इसमें नदियों की आवश्यकताओं, पारिस्थितिकी, समुदाय, जीवनयापन जैसे पक्षों पर ध्यान नहीं दिया गया है।
- कुछ पर्यावरणविदों का मानना है कि नदियां आमतौर पर 100 वर्षों में अपनी धारा बदल देती हैं। अतः यदि यह अंतर्बंधन का कार्य किया जाता है तो कालांतर में यह परियोजना निरर्थक हो जाएगी।
- यह परियोजना बड़े स्तर पर पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाली है क्योंकि नहरें तथा जल भंडारण संरचनाओं के निर्माण से बड़े पैमाने पर निर्वनीकरण होगा जिससे पूरे पारिस्थितिकी तंत्र को हानि पहुंचेगी।
- इस परियोजना के कारण बड़े स्तर पर सामुदायिक विस्थापन होगा, जिसको लेकर सरकार के पास कोई स्पष्ट योजना नहीं है।
- इस परियोजना में व्यय होने वाली धनराशि (5.6 लाख करोड़) इतनी बड़ी है कि सरकार को अनावश्यक रूप से विदेशी स्रोतों से ऋण लेना पड़ेगा जो ना केवल सरकार पर वित्तीय बोझ को बढ़ाएगा अपितु देश कि आर्थिक स्थिति के लिए भी हानिकारक होगा।

इसके अतिरिक्त इस परियोजना को लेकर कुछ राजनीतिक व संवैधानिक जटिलताएँ भी हैं। नदी जल बँटवारे को लेकर राज्यों के मध्य चल रहा संघर्ष इस परियोजना के लिए भी संकट उत्पन्न कर सकता है। किस नदी के कितने जल पर किस राज्य का कितना अधिकार है, इसे लेकर बहुत से विवाद अभी भी बने हुए हैं। ऐसे में विभिन्न राज्यों के मध्य इतने वृहद स्तर पर जल का विस्थापन किया जाना नए विवादों को जन्म दे सकता है।

परियोजना के लाभ

विश्व की 17 प्रतिशत जनसंख्या वाले देश भारत के पास सम्पूर्ण विश्व के उपयोग किए जा

सकने वाले जल का मात्र 4 प्रतिशत है। ऐसे में भारत में जल संरक्षण के साथ जल प्रबंधन की भी विशेष आवश्यकता व उपयोगिता है। यही कारण है कि नदी अंतर्बंधन परियोजना से जुड़ी तमाम समस्याओं के बाद भी इसे लेकर एक पर्यावरणविदों तथा विशेषज्ञों का एक पक्ष बहुत आशान्वित दिखाई देता है, जिसके अनुसार यह परियोजना भारत की जल सम्बन्धी समस्याओं के लिए वरदान से कम नहीं है।

- नदियों को आपस में जोड़ने से जल संकटग्रस्त क्षेत्रों को वर्ष भर जल आपूर्ति करके संतुलन स्थापित किया जा सकता है।
- इस परियोजना के माध्यम से कृषकों की मानसून पर निर्भरता को कम किया जा सकेगा।
- प्रत्येक वर्ष गंगा व ब्रह्मपुत्र बेसिन में बाढ़ का खतरा बना रहता है। इस परियोजना के माध्यम से इन दोनों तथा इनके जैसी अन्य बड़ी नदियों के जल की अधिशेष राशि को अपेक्षाकृत कम जलराशि वाले क्षेत्रों में स्थानांतरित करके बाढ़ के साथ–साथ सूखे की समस्या का भी व्यवहारिक समाधान हो सकता है।
- इस परियोजना के माध्यम से 34000 मेगावाट पनबिजली का उत्पादन अनुमानित है, जिसमें से 30000 मेगावाट हिमालयी भाग से तथा शेष 4000 मेगावाट प्रायद्वीपीय भाग से प्राप्त किया जा सकता है।
- इस परियोजना के द्वारा लगभग 35 मिलियन हेक्टेयर अतिरिक्त सिंचित भूमि प्राप्त की जा सकेगी, जिसमें 25 मिलियन हेक्टेयर सतही सिंचाई के माध्यम से तथा 10 मिलियन हेक्टेयर भू–जल के माध्यम से प्राप्त होगी।
- यह परियोजना भारत में लगभग 10000 किलोमीटर नौवहन के विकास का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक होगी, जिससे परिवहन लागत में कमी आएगी।
- यह परियोजना बड़े स्तर पर रोजगार उत्पन्न करने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होगी।
- इससे बड़े स्तर पर पेयजल की समस्या से निपटा जा सकता है।

इस प्रकार व्यय तथा क्षेत्र के दृष्टिकोण से यह विशाल परियोजना अपने आप में एक चुनौती तो है ही, परन्तु इसके साथ ही यह ना केवल भारत की जल सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं का एक व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत करती है अपितु इस क्षेत्र में अपार नई संभावनाओं को भी उत्पन्न करती है। यह सही है कि इससे कुछ हानि होने की संभावना भी है, अतः आवश्यकता है कि इन समस्याओं का समुचित व संतोषजनक समाधान करके जल्द से जल्द इस परियोजना को पूर्ण किया जाए। केन्द्र सरकार को राज्यों से विचार–विमर्श करके एक प्रभावी राष्ट्रीय जल नीति का निर्माण करके इस परियोजना के मार्ग में आने वाली पर्यावरणीय बाधाओं के साथ–साथ राजनीतिक समस्याओं का भी निराकरण करते हुए इसमें राज्यों की सहभागिता को भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

♦♦♦♦♦

विनाश के समीप यमुनाः दिल्ली का व्यष्टि अध्ययन

काजल
राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

जल मानव जाति के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण संसाधन है। सदियों से नदियां ही हैं, जो धरती पर जल की मांग को पूरा करती रही हैं। आज जल प्रदूषण भारत में एक प्रमुख पर्यावरणीय संकट बन गया है। वर्तमान समय में बढ़ते घरेलू उपयोग, शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं कृषि उपयोग के कारण नदियों का जल प्रदूषित हुआ है जिससे नदियों की गुणवत्ता में कमी आई है।

गंगा नदी की एक प्रमुख सहायक नदी के रूप में यमुना, जिला उत्तरकाशी (उत्तराखण्ड) में समुद्र तल से लगभग 6387 मीटर की ऊंचाई पर निचले हिमालय की मुसौरी रेंज में बेंडरपंच चोटी के पास यमुनोत्री हिमनद से निकलती है। भारत के ऊपरी भाग में मानव गतिविधियों के नकारात्मक प्रभाव की कमी के कारण यमुना नदी के जल की गुणवत्ता अच्छी बनी हुई है, परन्तु जैसे–जैसे यह नदी शहरी क्षेत्रों में प्रवेश करती है, मानवजनित गतिविधियों एवं प्रदूषण के कारण इसकी गुणवत्ता में कमी होती गई है। नदियों के समीप शहरीकरण एवं औद्योगीकरण किया गया, परिणामस्वरूप अपशिष्ट जल प्रायः उचित उपचार के बिना नदियों में बहाया गया जिसके कारण नदियों के जल में प्रदूषण की मात्रा बढती चली गई।

दिल्ली में यमुना नदी का प्रवाह एवं प्रदूषण

यमुना नदी लगभग 224 किलोमीटर के मार्ग की यात्रा के बाद पल्ला गांव के पास दिल्ली में प्रवेश करती है। दिल्ली की पेयजल आपूर्ति के लिए नदी को बांध के माध्यम वजीराबाद में संचयित किया जाता है। वजीराबाद बांध के अनुप्रवाह में जो भी पानी बहता है, वह आंशिक रूप से साफ़ किया गया घरेलू और औद्योगिक अपशिष्ट जल है। वजीराबाद बांध के 22 किलोमीटर की अनुप्रवाह के बाद एक और बंधन, ओखला बांध, जिसके माध्यम से यमुना जल सिंचाई के लिए आगरा नहर में मोड़ दिया जाता है। ओखला बांध से परे नदी में जो भी पानी बहता है, उसमें पूर्वी दिल्ली, नोएडा और साहिबाबाद से उत्पन्न घरेलू और औद्योगिक अपशिष्ट जल होता है जिसे शाहदरा नाले के माध्यम से नदी में छोड दिया जाता है।

जल की गुणवत्ता के आधार पर, पूरे यमुना नदी के फैलाव को पांच विशिष्ट हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है। दिल्ली में यमुना नदी का फैलाव 375 किलोमीटर है और नदी के पूरे हिस्से में प्रदूषण का योगदान 80 प्रतिशत से भी अधिक है। वर्तमान समय में यमुना नदी का जल स्पष्ट रूप से काला हैं, और इसकी गुणवत्ता या स्वास्थ्य को सत्यापित करने के लिए

वास्तव में कोई परीक्षण की आवश्यकता नहीं है। साथ ही नदी के आस–पास से आ रही दुर्गन्ध प्रदूषण को उजागर करता है।

यमुना नदी के प्रदूषण के स्रोत

एक समय में स्वच्छ जल के संदर्भ में यमुना नदी की गुणवत्ता अत्यधिक थी। लेकिन अब यह नदी दुनिया की सबसे प्रदूषित नदियों में से एक है, मुख्यतः दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में। इसके मुख्य कारण निम्न हैं:

प्रथम, अपशिष्ट का ढेर, केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) के अनुसार दिल्ली के लोग नदी में कुल अपशिष्ट का 58 प्रतिशत डालते है। परिणामस्वरूप प्रदूषक नदी के जल में एक भयंकर दर से बढ़ रहे हैं। नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल के अनुसार वर्तमान समय में दिल्ली की 70 प्रतिशत जनता यमुना नदी का उपचार किया गया पानी पी रही हैं।

द्वितीय, गंदे नाले, दिल्ली सीवेज के 1,900 मिलियन लीटर प्रति दिन (एमएलडी) का उत्पादन कर रही है। लेकिन सीवेज के प्रबंधन के लिए उत्तरदायी दिल्ली जल बोर्ड (डीजेबी) शहर में उत्पन्न कुल सीवेज का केवल 54 प्रतिशत एकत्र और उपचार कर पाने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त हाल ही में भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक ने पाया है कि 32 सीवेज उपचार संयंत्रों में से 15 अपनी क्षमताओं से नीचे काम कर रहे हैं। यह यमुना नदी को पहले से कहीं और तेज गति से प्रदूषित कर रहा है। जिसको लेकर मार्च 2018 को दिल्ली जल बोर्ड द्वारा दी गयी रिपोर्ट में यह कहा गया कि यमुना के प्रदूषण के लिए हरियाणा उत्तरदायी है जो दिल्ली में अमोनिया के उच्च स्तर प्रदान करता है ।

तृतीय, पानी में अमोनिया की मात्रा का लगातार बढ़ना है। अम्मोनालिक नाइट्रोजन मूल रूप से अमोनिया प्रदूषक है जो प्रायः अपशिष्ट जल में, उर्वरक चलाने या औद्योगिक प्रदूषण में पाया जाता है। हरियाणा पर राष्ट्रीय राजधानी में "जहर सीवेज पानी" की आपूर्ति करने का आरोप लगा। यमुना के जल में अमोनिया की मात्रा को लेकर दिल्ली जल बोर्ड एवं हरियाणा सरकार के बीच विवाद बना हुआ है लेकिन प्रदूषित पानी का मुद्दा वहीं है।

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त यमुना नदी के किनारे मानव आबादी का बढ़ता घनत्व, मूर्तियों का विसर्जन, मवेशी स्नान और कृषि उपक्रम आदि यमुना नदी में प्रदूषण करने के कुछ अन्य कारण है जिन पर नियंत्रण रखना आवश्यक है।

निष्कर्ष एवं उपाय

सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट्स (एसटीपी) की स्थापना, प्रभावी उपचार संयंत्रों की स्थापना (ईटीपी),

आम प्रभावी उपचार संयंत्रों की स्थापना, यमुना एक्शन प्लान, पर्यावरण जागरूकता अभियान यमुना को साफ करने के लिए दिल्ली सरकार द्वारा उठाए गए कुछ ऐसे कदम हैं जो यमुना नदी में प्रदूषण की रोकथाम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। 1993 से जापान अंर्तराष्ट्रीय सहयोग एजेंसी, जापान सरकार यमुना को विभिन्न चरणों में साफ करने के लिए भारत सरकार की सहायता कर रही है।

लेकिन यमुना की सफाई के हर लक्ष्य ने अभी तक काम नहीं किया है और नदी अभी भी प्रदूषित है। अधिकांश सीवेज उपचार सुविधाओं को या तो अपर्याप्त वित्त पोषण के कारण काम में नहीं लाए गए है या ठीक से काम नहीं कर रहे हैं। सरकारों और संस्थाओ से अतिरिक्त जल प्रदूषण को रोकने के लिए हमें व्यक्तिगत रूप से भी नदी को स्वच्छ रखने का उत्तरदायित्व लेना होगा। जिसके तहत जल प्रदूषण को रोकने के लिए अपशिष्ट जल को प्रभावी प्रौद्योगिकियों के माध्यम से पुर्ननवीनीकरण किया जाना और विभिन्न उद्देश्यों के लिए पुनः उपयोग किया जाना सम्मिलित हैं।

इसके अतिरिक्त सीवेज सिस्टम में सुधार नदियों में सीवेज पानी के प्रवाह को रोक सकता है। जल में प्रदूषण को रोकने के लिए किसानों को उर्वरकों और कीटनाशकों के बजाय जैव–उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए। साथ ही नदी के तटों के साथ वृक्षारोपण के नुकसान को रोकने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए और कठोर नियमों और विनियमों का निर्माण और नदी में प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए उनके प्रभावी कार्यान्वयन होना आवश्यक है।

♦♦♦♦♦

III

साहित्यिक समीक्षा

जल तथा इसके विविध रूप, सदैव अकादमिक विमर्श का विषय रहे है। राज्य, समाज तथा अकादमिक जगत सभी अपने–अपने स्तर पर जल के कारण उत्पन्न संकट – बाढ़, सूखा, पेयजल की समस्या, सिंचाई, इत्यादि से निपटने हेतु विविध समाधान व विकल्प प्रस्तुत करते है। जिनके पीछे तर्को की एक लंबी श्रृखंला काम करती है। जल संबंधी विभिन्न समस्याओ के समाधान के लिए किसी सर्वोत्तम नीति या विकल्प का चयन करने में अकादमिक जगत की सोच विशेष सहायता करती है। ''साहित्य समीक्षा'' के अंतर्गत प्रस्तुत लेख इसी कम में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

बाढ़ सम्बन्धी साहित्यः विविध दृष्टिकोणों की वर्तमान सन्दर्भ में एक समीक्षा

निशा कुमारी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

जल के अनेक रूपों में बाढ़ का रूप सर्वाधिक भयावह प्रतीत होता है। हाल ही में केरल तथा भारत के अन्य हिस्सों में बाढ़ द्वारा लायी गयी तबाही ने इसकी भयावहता को प्रदर्शित किया। भारत के अनेक हिस्सों विशेषकर हिमालयी उत्तरी–पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्र में बाढ़ की समस्या प्रतिवर्ष रहती है। भारत में बाढ़ की समस्या, समाधान तथा बाढ़ प्रबंधन के प्रश्नों का उत्तर खोजती ऐसी अनेकों पुस्तकें तथा लेख हैं, जो इस सम्बन्ध में विविध दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। इस लेख के मुख्य रूप से दो उद्देश्य हैंः प्रथम, भारत में बाढ़ सम्बन्धी विमर्श की रूपरेखा को प्रस्तुत करना तथा द्वितीय, वर्तमान परिदृश्य में इन विविध पक्षों की प्रासंगिकता की समीक्षा करना है।

बाढ़ सम्बन्धी विमर्श पर दृष्टि डालें तो यह अपने मूल दृष्टिकोण के आधार पर मुख्यतः दो भागों में विभाजित प्रतीत होता है। प्रथम, आधुनिक सिविल इंजीनियरिंग तथा राज्यवादी ज्ञान व दूसरा परम्परावादी ज्ञान।

■ आधुनिक नागरिक अभियंत्रिकी (सिविल इंजीनियरिंग) तथा राज्यवादी दृष्टिकोण

आधुनिक वैज्ञानिक तथा नागरिक अभियंत्रिकी तकनीकी ज्ञान के समर्थक हैं, जिन्हें विकास के नेहरूवादी मॉडल के समर्थक के रूप में भी जाना जाता है, यह बाढ़ नियंत्रण का राज्यवादी पक्ष है। यह बाढ़ के सन्दर्भ में स्थानीय आमजनों के ज्ञान तथा तकनीक को पिछड़ा तथा अवैज्ञानिक मानते हैं। यह पक्ष बाढ़ को पूरी तरह एक समस्या के रूप में देखता हैं। भारत में नागरिक अभियंत्रिकी तथा राज्यवादी विचारों का उदय औपनिवेशिक राज्य की स्थापना के साथ हुआ जिसने बदलती सामाजिक तथा भौतिक संबंधों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया।

आधुनिक तकनीक के समर्थक अपने पक्ष को रखते हुए बाढ़ नियंत्रण हेतु बड़े बांधों के निर्माण को जहाँ आवश्यक मानते हैं, वहीं इस पक्ष को और सुदृढ़ करते हुए इसे सिंचाई की अच्छी व्यवस्था के लिए भी हितकारी मानते हैं। समर्थकों के अनुसार सिंचाई की इस प्रविधि से उत्पादन में वृद्धि होगी, फलतः खाद्य सुरक्षा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इतना ही नहीं इससे मानसून की विफलता होने पर भी खाद्यान्नों का बीमा किया जा सकेगा और निम्न भूजल स्तर वाले स्थानों पर भी कृषि उत्पादन संभव होगा। इस प्रकार बाँध का निर्माण बहुस्तरीय प्रभाव उत्पन्न करके बेहतर सामाजिक और आर्थिक स्थिति में वृद्धि करेगा। *टेमिंग द वाटरः द पोलिटिकल इकॉनमी ऑफ लार्ज डैम इन इंडिया* (1997) में सत्यजीत सिंह भारत

में सिंचाई का राजनीतिक अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण से अध्ययन करते हुए लिखते है कि सिंचाई सम्बन्धी इस मॉडल का विकास भारत में ब्रिटिश द्वारा उनके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया, जिसका समतामूलक समाज की स्थापना से कोई सरोकार नही था। ध्यान देने योग्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त स्वतंत्र भारत में इस सम्बन्ध में जो नीति अपनाई गई उसमे औपनिवेशिक नीति की ही निरन्तरता देखने को मिलती है।

■ परम्परावादी दृष्टिकोण

बाढ़ नियंत्रण के उपरोक्त दृष्टिकोण से भिन्न नदियों को समझने, बाढ़ के साथ जीने, समायोजन स्थापित करने, बाढ़ की मारक क्षमता को कम करने में स्थानीय ज्ञान पर विश्वास करने तथा वर्तमान सन्दर्भ में इस ज्ञान के उचित उपयोग की आवश्यकता का समर्थन करने वाले विद्वान व उनकी रचनाएं हैं। इस दृष्टिकोण में विकास के गांधीवादी मॉडल के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। सर विलियम विलकॉक्स, श्री एच सी मजुमदार, दिनेश मिश्र, कपिल भट्टाचार्य, अनुपम मिश्र इत्यादि विद्वान इसी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन विचारकों का मानना है कि बाढ़ नियंत्रण के लिए जिस प्रकार से बांधों तथा तटबंधों का निर्माण किया गया, उनसे बाढ़ से सुरक्षा तथा लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक हुई है। ब्रिटिश इन्जीनियर सर विलियम विलकॉक्स नामक एक अंग्रेजी इंजीनियर जिन्होने मिस्र, बंगाल तथा बिहार जैसे नदी प्रदेशों में काम किया। इन्होने 1930 में कलकत्ता के प्रांगण में तीन भाषण दिए। बाँध निर्माण का विरोध करते हुए विलकॉक्स ने कहा था कि इन राक्षसी बाँध रुपी दीवारों से नदियों को जितना कैद किया जायेगा वह उतना ही वीभत्स रूप धारण करेंगी।

अनुपम मिश्र अपनी पुस्तक *आज भी खरे हैं तालाब* (1995) में सम्पूर्ण भारत में जल संचयन की पारंपरिक पद्धतियों की उपयोगिता का वर्णन करते हुए वर्तमान सन्दर्भ में इनकी प्रासंगिकता को रेखांकित करते हैं। अनुपम मिश्र के अनुसार आज की पीढ़ी ने अपने नए परन्तु सूक्ष्म ज्ञान के समक्ष सम्पूर्ण पारंपरिक ज्ञान को शून्य कर दिया है। *तैरने वाला समाज आज डूब रहा है* (2008) में अनुपम मिश्र उत्तर बिहार में बाढ़ की समस्या के सन्दर्भ में वर्तमान समय के विरोधाभासों को दर्शाते हुए लिखते हैं कि पहले हमारा समाज बिना इतने बड़े निष्कृष्ठ प्रशासन के भी अपनी व्यवस्था उत्तम प्रकार से करना जानता था इसलिए बाढ़ आने पर वह इतना परेशान नहीं दिखाता था। नदियों की धारा इधर से उधर न भटके यह मानकर हमने एक नए भटकाव की जो योजना अपनाई है उसे तटबंध कहते हैं। परन्तु आज यह पता चलता है कि इनसे बाढ़ रुकने के अपेक्षा बढ़ी है।

कपिल भट्टाचार्य ने भी अपने बांग्ला लेख *दामोदेर परिकल्पनेर समाकष्कर चाही* (1986) तथा *फर्रक्का बर्राज ओ बान्या* (फर्रक्का बर्राज एंड फ्लड) में भी लगभग इन्ही बातों को परिकल्पना के रूप में देश के सामने रखा था। दिनेश मिश्र की पुस्तकें भी भारत में बाढ़ तथा नदियों के इसी दृष्टिकोण का समर्थन करती हैं। *दुई पाटन के बीचः कोसी नदी की कहानी* (2006) में

बाढ़ नियंत्रण के नाम पर कोसी के बहाव को तो पाटों अर्थात् तटबंधों के बीच बाँधने की घटना से उत्पन्न हुए विपरीत परिणामों का वर्णन किया है। अपने लेख *लिविंग विथ फ्लडः पीपल्स पर्सपेक्टिव* (2001) में लिखते हैं कि आधुनिक तकनीकें न तो बाढ़ नियंत्रण में सफल रहीं है और न ही लोगों के अनुकूल सिद्ध हुई हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह आधुनिक तकनीकें नदी के जल के नियंत्रण पर ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित करती हैं न कि उस बाढ़ के पानी के संभावित उत्तम उपयोग पर। मिश्र लिखते हैं कि बिहार, पश्चिम बंगाल तथा बांग्लादेश के गावों में बाढ़ प्रबंधन के परम्परागत तरीके देखे जा सकतें हैं, जिनमें प्रकृति की कार्य–पद्धति के साथ न्यूनतम मानवीय हस्तक्षेप किया जाता था । जिनकी वर्तमान समय में प्रासंगिकता बढती जा रही है।

वर्तमान समय में गंगा नदी बेसिन, ब्रह्मपुत्र नदी बेसिन तथा पश्चिमी घाट इत्यादि में राज्य द्वारा किये गये बाँध तटबंध निर्माण संबंधी अनेक प्रयासों के पश्चात प्रतिवर्ष आने वाली बाढ़ों द्वारा होने वाली तबाही राज्यवादी तथा नेहरूवादी दृष्टिकोण के विरोधाभासों को प्रतिबिंबित करती है। जिसकी प्रशंसा में जवाहलाल नेहरु ने इन्हें 'आधुनिक भारत के मंदिर' की संज्ञा दी थी वह आज अधिक तबाही का स्रोत ही सिद्ध हुई हैं। हाल ही में केरल में बाढ़ द्वारा की गयी जान–माल की भयंकर बर्बादी भी राज्यवादी दृष्टिकोण की कमियों को प्रस्तुत करने वाली श्रृंखला की एक अन्य घटना है। माधव गाडगिल ने 2011 में ही अपने एक प्रतिवेदन में केरल में बाँधों के अवैज्ञानिक प्रबंधन के प्रति सरकार को संभावित समस्या की चेतावनी दी थी।

अतः सम्पूर्ण बाढ़ नियंत्रण की संकल्पना तथा इसके व्यवहारिक परिणामों का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि इस सम्पूर्ण संकल्पना को परिवर्तित करने की आवश्यकता है तथा बाढ़ नियंत्रण के स्थान पर बाढ़ प्रबंधन की ओर काम करने का विकल्प बाढ़ की विकरालता को न्यूनतम करने की दिशा में एक सार्थक कदम प्रतीत होता है। जहाँ यह प्रकृति में मनुष्य के न्यूनतम हस्तक्षेप का मार्ग सुझाता है वहीं समाज और प्रकृति के परस्पर संबंधों तथा परम्परावादी ज्ञान को समावेशित करते हुए धारणीय विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

♦♦♦♦♦

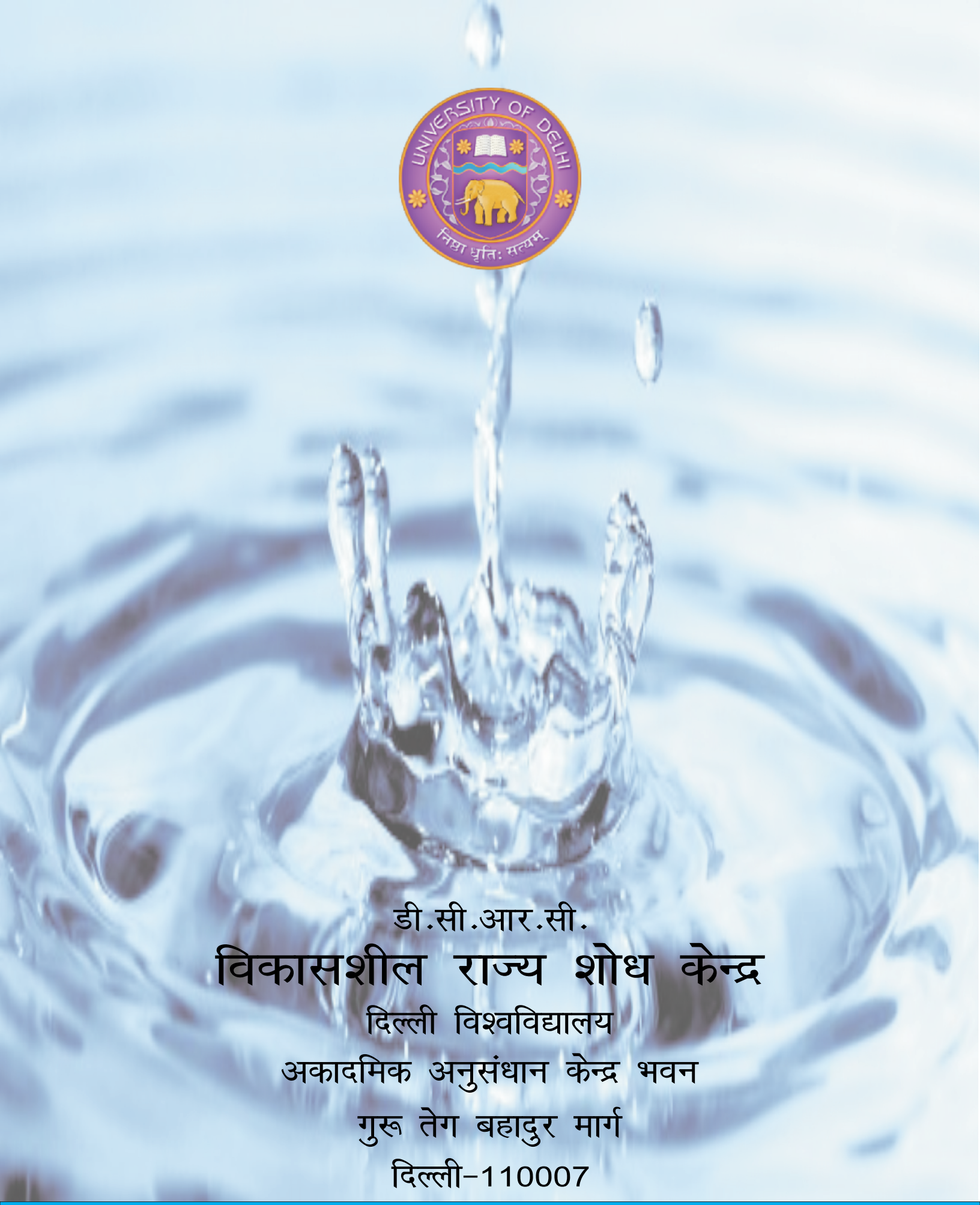

डी.सी.आर.सी.

विकासशील राज्य शोध केन्द्र

दिल्ली विश्वविद्यालय

अकादमिक अनुसंधान केन्द्र भवन

गुरू तेग बहादुर मार्ग

दिल्ली–110007

www.dcrc.du.ac.in office@dcrc.du.ac.in @dcrcofficial +91-11-27666281